की चेष्टा की गई। वज्रयान पंचमकारों मे बंध गया। मंत्र,मध, मैथुन, मांस और मुद्रा वज्रयान के मूल आधार बन गये। इस प्रकार वज्रयान में यौन संबंन्धों की स्वच्छंन्दता को बढ़ावा दिया। समाज पर इसका दूषित प्रभाव पड़ा। इसतरह बौद्ध धर्म महायान, यंत्रयान, वज्रयान आदि में विभक्त होता हुआ क्रमश: पतनोन्मुख होता गया।

तंत्रों मंत्रोद्वारा सिद्धि चाहनेवाले सिद्ध कहलाये। ये सिद्ध वज्रयानी अथवा सहजयानी ही थे। वज्रयानी सिद्धों ने अपने मत–प्रचार के लिए जो साहित्य लिखा, वह आदिकालीन सिद्ध–साहित्य कहलाता है। सिद्धों की संख्या ८४ मानी जाती है जिनमें से २३ सिद्धों की रचनाएँ उपलब्ध होती है। प्रत्येक सिद्ध के नाम के पीछे 'या' शब्द खडा हुआ है। सरहया हिन्दी के प्रथम सिद्ध माने जाते है। उनका 'देहाकोश' ग्रन्थ विख्यात है। इनके अलावा शबरया, लुझॅ, डोंबियॅ, कळयॅ, कुकुरिपा, मुंडरियॅ,शांतिपा और वाणापा आदि सिद्ध कवियों मे भी आदिकालीन सिद्ध साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दिया है।

इन सिद्धों ने गृहस्थ जीवन पर बल दिया। इसके लिए स्त्री का सेवन, संसार रुप विषय से बचने के लिए था। जीवन के स्वाभाविक भोगों में प्रवृत्ति के कारण सिद्ध साहित्य में भोग में निर्वाण की भावना मिलती है। जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों में विश्वास के कारण इन सिद्धों का सिद्धान्त पक्ष सहज मार्ग कहलाया।

सिद्ध प्राय: अशिक्षित और हीन जाति से संबन्ध रखते थे, अत: उनकी साधना की साधनभूत मुद्रायें कापाली, डोम्बी आदि नायिकायें भी निम्न जाति की थी क्योंकि इनके लिए ये सुलभ थी। उन्होंने धर्म और आध्यात्म की आड़ में जन–जीवन के साथ विड़म्बना करते नारी का उपभोग किया। उनके कमल और कलिश योनि और शिश्न के प्रतीक मात्र है। सिद्धों ने सरल या सहज जीवन पर जोर दिया है। समस्त बाह्य अनुष्ठानों एवं षट्दर्शन का विरोध किया है, गुरू–कृपा की कामना की है, पुस्तकीय ज्ञान से ब्रह्म साक्षात्कार में संदेह व्यक्त किया है। शरीर को समस्त साधनाओं का केन्द्र तथा पवित्र तीर्थ बताया है, आत्मा–परमात्मा की एकता में विश्वास व्यक्त किया है, सामरस्य भाव तथा महासुख की चर्चा की है और पाप–पुण्य दोनों को बन्धन का कारण बताया है। सिद्ध साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते है– ''सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदिरूप की सामग्री प्रामाणिक ढ़ंग से प्राप्त होती है। चारणकालीन साहित्य तो केवल मात्र तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिच्छाया है। यह सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आनेवाली धार्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का स्पष्ट रुप है। संक्षेप में जो जनता नरेशों की स्वेच्छाचारिता पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया।''

सिद्ध साहित्य की विशेषताएँ :–

सिद्ध साहित्य अपनी प्रवृत्ति और प्रभाव के कारण हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखता है। इन सिद्धोंने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो का दिग्दर्शन करनेवाले साधनापरक साहित्य का निर्माण किया। सिद्ध–साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियॉ इसप्रकार है :–

Scanned with CamScanner

१) जीवन की सहजता और स्वाभाविकता मे दृढ विश्वास :–

सिद्ध कवियों ने जीवन की सहजता और स्वाभाविकता में दृढ़विश्वास व्यक्त किया है। अन्य धर्म के अनुयायियों ने जीवन पर कई प्रतिबन्ध लगाकर जीवन को कृत्रिम बनाया था। विशेषकर कनक कामिनी को साधना मार्ग की बाधाएँ मानी थी। विभिन्न कर्मकाण्ड़ों से साधना मार्ग को भी कृत्रिम बनाया था। सिद्धों ने इन सभी कृत्रिमताओं का विरोध कर जीवन की सहजता और स्वाभाविकता पर बल दिया। उनके मतानुसार सहज सुख से ही महासुख की प्राप्ति होती है। इसलिए सिद्धों ने सहज मार्ग का प्रचार किया। सहज मार्ग के अनुसार प्रत्येक नारी प्रज्ञा और प्रत्येक नर करूणा (उपाय) का प्रतीक है, इसलिए नर–नारी मिलन प्रज्ञा और करूणा निवृत्ति और प्रवृत्ति का मिलन है, दोनों को अभेदता ही 'महासुख' की स्थिति है।

२) गुरू महिमा का प्रतिपादन :–

सिद्धोंने गुरू–महिमा का पर्याप्त वर्णन किया है। सिद्धों के अनुसार गुरू का स्थान वेद और शास्त्रों से भी ऊँचा है। सरहया से कहा है कि गुरू की कृपा से ही सहजानन्द की प्राप्ति होती है। गुरू के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। जिसने गुरूपदेश का अमृतपान नहीं किया, वह शास्त्रों की मरूभूमि में प्यास से व्याकुल होकर मग जाएगा। –

''गुरू उवएसि अमिरस धावण पीएड जे ही।
बहु सत्यत्य मरू स्थलहि तिसिय मरियड ते ही।।

३) बाह्याडम्बरों पाखण्ड़ों की कटु आलोचना :–

सिद्धों ने पुरानी रूढ़ियों परम्पराओं और बाह्य आडम्बरों, पाखण्ड़ों का जमकर विरोध किया है। इसिलिए इन्होंने वेदों, पुराणों, शास्त्रों की खुलकर निंदा की है। वर्ण व्यवस्था, ऊँच–नीच और ब्राह्मण धर्मों के कर्मकाण्ड़ों पर प्रहार करते हुए सरहया ने कहा है – ''ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से तब पैदा हुए थे, अब तो वे भी वैसे ही पैदा होते हैं, जैसे अन्य लोग। तो फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? यदि कहा कि संस्कारों से ब्राह्मणत्व होता है तो चाण्ड़ाल को अच्छे संस्कार देकर ब्राह्मण कों नंदी बना देते? यदि आग में घी डालने से मुक्ति मिलती है तो सबको क्यों नहीं ड़ालने देते? होम करने से मुक्ति मिलती है यह पता नहीं लेकिन धुआँ लगने से आँखों को कष्ट जरूर होता है।''

दिगम्बर साधुओं को लक्ष्य करते हुए सरहया कहते हैं कि ''यदि नंगे रहने से मुक्ति हो जाए तो सियार, कुत्तों को भी मुक्ति अवश्य होनी चाहिए। केश बढ़ाने से यदि मुक्ति हो सके तो मयुर उसके सबसे बड़े अधिकारी है। यदि कंध भोजन से मुक्ति हो तो हाथी, घोड़ों को मुक्ति पहले होनी चाहिए।'' इसतरह इन सिद्धों ने वेद, पुराण और पण्ड़ितों की कटु आलोचना की है।

४) तत्कालीन जीवन में आशावादी संचार :–

सिद्ध साहित्य का मुल्यांकन करते हुए डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने लिखा है – ''जो जनता नरेशों की स्वैच्छाचारिता, पराजय या पतन से त्रस्त होकर निराशावाद के गर्त में गिरी हुई थी, उसके लिए इन सिद्धों की वाणी ने संजीवनी का कार्य किया। ... जीवन की भयानक

Scanned with CamScanner

वास्तविकता की अग्नि से निकालकर मनुष्य को महासुख के शीतल सरोवर में अवगाहन कराने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया।'' आगे चलकर सिद्धोंमें स्वैराचार फैल गया, जिसका बूरा असर जन–जीवन पर पड़ गया।

५) रहस्यात्मक अनुभूति :–

सिद्धों ने प्रज्ञा और उपाय (करूणा) के मिलनोपरान्त प्राप्त महासुख का वर्णन और विवेचन अनेक रुपकों के माध्यम से किया है। नौका, वीणा, चूहा, हिरण आदि रूपकों का प्रयोग इन्होंने रहस्यानुभूति की व्याख्या के लिए किया है। रवि, शशि, कमल, कुलिश, प्राण, अवधूत आदि तांत्रिक शब्दों का प्रयोग भी इसी व्याख्या के लिए हुआ है। डॉ. धर्मवीर भारती ने अपने शोध ग्रन्थ 'सिद्ध साहित्य' में सिद्धों की शब्दावली की दार्शनिक व्याख्या कर उसके आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट किया है।

६) श्रृंगार और शांत रस :–

सिद्ध कवियों की रचना में श्रृंगार और शांत रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं पर उत्थान श्रृंगार चित्रण मिलता है। अलौकिक आनन्द की प्राप्ति का वर्णन करते समय ऐसा हुआ है।

७) जनभाषा का प्रयोग :–

सिद्धों की रचनाओं में संस्कृत तथा अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा का प्रयोग मिलता है। डॉ. रामकुमार वर्मा इनकी भाषा को जन समुदाय की भाषा मानते है। जनभाषा को अपनाने के बावजूद जहाँ वे अपनी सहज साधना की व्याख्या करते है, वहाँ उनकी भाषा क्लिष्ट बन जाती है। सिद्धों की भाषा को हरीप्रसाद शास्त्री ने 'संधा–भाषा' कहा है। साँझ के समय जिस प्रकार चीजें कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट दिखाई देती है, उसी प्रकार यह भाषा कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट अर्थ–बोध देती है। यही मत अधिक प्रचलित है।

८) छन्द प्रयोग :–

सिद्धों की अधिकांश रचना चर्या गीतो में हुई है, तथापि इसमें दोहा, चौपाई जैसे लोकप्रिय छन्द भी प्रयुक्त हुए है। सिद्धों के लिए दोहा बहुत ही प्रिय छन्द रहा है। उनकी रचनाओं में कहीं कहीं सोरठा और छप्पय का भी प्रयोग पाया जाता है।

९) साहित्य के आदि रूप की प्रामाणिक सामग्री :–

सिद्ध साहित्य का महत्व इस बात में बहुत अधिक है कि उससे हमारे साहित्य के आदि रूप की सामग्री प्रामाणिक ढ़ंग से प्राप्त होती है। चारण कालीन साहित्य तो केवल तत्कालीन राजनीतिक जीवन की प्रतिछाया है। लेकिन सिद्ध साहित्य शताब्दियों से आनेवाली धर्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा का एक सही दस्तावेज है।

Scanned with CamScanner